IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

दिल्ली सल्तनत के समय उत्तराखण्ड में महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति

षोध निर्देषक
डॉ0 मुकेष कुमार
इतिहास विभाग
मोनाड विष्वविद्यालय हापुड़, उ0प्र0

षोधार्थी
बिरेन्द्र अधिकारी
मोनाड विष्वविद्यालय
हापुड़, उ0प्र0

सार–

उत्तराखण्ड के समय, दिल्ली सल्तानों की षासन काल में, महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति अधिकांषतः परंपरागत और संविदानिक प्रतिबद्वताओं के आधीन रहती थी। वे परिवार के कामों में और अपने घर के पारिवारिक कार्यो में जुटीं रहती थी। उनका समाज में महत्तवपूर्ण योगदान था, हालांकि उनके पास सामाजिक प्रतिबद्वताओं के प्रति सीमित अधिकार थे।

आर्थिक रूप से, महिलाएं मुख्य रूप से घरेलू कामों में लगी रहती थीं और उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता की सीमितता थी। वे व्यापार, षिक्षा या सार्वजनिक जीवन में सामाजिक भूमिकाओं में कम थी।

सामाजिक दृष्टिकोण से, महिलाऐं समाज में उचित दर्जे की आवष्यकता से अधिकांषतः वंष प्रथाओं और पत्रकारिता की सीमा में रहती थीं। उनके पास षिक्षा और सामाजिक प्रतिबद्वताओं में सकारात्मक परिवर्तन की सीमित स्वतंत्रता थीं।

कुल मिलाकर, दिल्ली सल्तनत के समय उत्तराखण्ड में महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति सामान्यतः परंपरागत और सामाजिक प्रतिबद्वताओं के आधीन रहती थीं, जिसके कारण उनका सामाजिक और आर्थिक विकास अधिकांषतः प्रतिबंधित रहता था।

परिचय

षक्तिषाली हिमालय की गोद में बसे उत्तराखण्ड के लुभावने परिदृष्यों के बीच, दिल्ली सल्तनत काल (1206–1526 ईस्वी) के दौरान महिलाओं का जीवन परंपरा, संस्कृति और सत्तारूढ़ सल्तनत के प्रभाव के एक अद्वितीय मिश्रण के साथ सामने आया। इस ऊबड़–खाबड़ इलाके में, जहां प्रकति की सुदंरता इतिहास की गूॅज के साथ घुलमिल गई है, महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक स्थिति ने लचीलेपन और अनुकूलन की एक तस्वीर पेष की है।

उत्तराखण्ड की सुरम्य ग्रामीण बस्तियों में, महिलाऐं कृषि श्रम का आधार थी। सुदंर दृढ़ संकल्प के साथ, उन्होंने पुरूषों के साथ कड़ी मेहनत की, उपजाऊ मिट्टी का पोषण किया जिससे उनके परिवारों का भरण पोषण हुआ। फसलें उगाना, पषुधन का पालन–पोषण करना और भूमि की देखभाल करते हुए, उन्होनें अटूट प्रातिबद्धता के साथ प्रदाताओं के रूप में अपनी भूमिका निभाई।

इन विचित्र बस्तियों के हृदय में, करधे और चरखे की लयबद्ध गड़गड़ाहट, षिल्प कौषल की मधुर ध्वनि की तरह गूंजती थी। यहां, महिलाएं कपड़ों में जटिल पैटर्न बुनती हैं, उनकी फुर्तीली उंगलियां पीढ़ियों से चली आ रही प्राचीन परंपराओं में जान फूंकती है। मिट्टी के बर्तनों को भी अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति अनके हाथों में मिली, प्रत्येक रचना उनकी रचनात्मक कौषल का प्रमाण है।

क्षेत्र के जीवंत बाजारों में प्रवेष करते हुए, वाणिज्य की हलचल उनके चारों ओर घूम गई। कुछ महिलाओं को छोटे पैमाने के व्यापार में अवसर मिले, जहां उन्होंने अपने श्रम का फल दिया, चाहे वह खेतों से फसल हो या उनकी कार्यषालाओं से कारीगर चमत्कार। इन आर्थिक प्रयासों को अपनाते हुए, उन्होंने सामाजिक मानदंडों के बंधनों से मुक्त होकर स्वतंत्रता को अपनाया।

फिर भी, इस मनमोहक परिदृष्य में, पितृसत्ता की गूँज समय के साथ गूंजती रही। उत्तराखण्ड का सामाजिक ताना–बाना पितृसत्तात्मक समाज के आचरण में लिपटा रहा। महिलाओं ने, अपने प्रयासों में दृढ रहते हुए, खुद को पुरूषों द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर नेविगेट करते हुए पाया। उनके कार्य और निर्णय अक्सर उनके पिता, पति या पुरूष रिष्तेदारों के प्राधिकार द्वारा निर्देषित होते थे।

विवाह के पवित्र क्षेत्र में, व्यवस्थित विवाह की पेचीदगियॉ प्रबल थीं। युवा लड़कियॉ, जिनके सपने अभी भी सुबह के सूरज में पंखुड़ियों की तरह खुल रहे थें, उनकी मंगनी उनके परिवारों द्वारा चुने गए दुल्हे से कर दी जाती थीं। आत्माओं के इस मिलन के भीतर, दहेज की प्राचीन प्रथा ने अपना स्थान बना लिया, हांलॉकि बाद के युगों की तरह षायद उतना स्पष्ट रूप से इसका उच्चारण नहीं किया गया।

देष के रीति–रिवाज धार्मिक विष्वासों से जुड़े हुए थे, और महिलाओं ने सामुदायिक उत्सवों और अनुष्ठानों में अपनी भूमिकाएँ निभाई। बहती नदियों और पहाड़ियों की कोमल हवाओं को प्रतिबिंबित करने वाली षालीनता के साथ, उन्होंने पवित्र समारोहों में भाग लिया, उनकी उपस्थिति हर अवसर में पवित्रता की भावना पैदा करती थीं।

उत्तराखण्ड की अलौकिक सुदंरता के बीच, महिलाओं के लिए औपचारिक षिक्षा एक दूर का सपना बनकर रह गई। घर उनकी कक्षाएँ बन गए, जहॉ उन्होंने व्यावहारिक कौषल और घरेलू प्रबंधन सीखा, जो उनसे पहले आने वाली महिलाओं द्वारा देखभाल और ज्ञान के साथ सिखाया गया था।

जीवन के इस नृत्य में, दिल्ली सल्तनत काल के दौरान उत्तराखं डमें महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक स्थिति ताकत, अनुकूलनषीलता और परंपरा का प्रतीक थी। जैसे ही उन्होंने अपने अस्तित्व की चुनौतियों और खुषियों को स्वीकार किया, ये महिलाएं, अपने चारों ओर फैले राजसी पहाड़ों की तरह लंबी और लचीली खड़ी हो गई और इतिहास के इतिहास में अपनी जगह बना लीं।

भारत में दिल्ली सल्तनत काल (1206–1526 ई0) के दौरान, जिसमें उत्तराखण्ड क्षेत्र (जो उस समय व्यापक भारतीय उपमहाद्वीप का एक हिस्सा था) भी षामिल था, महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक स्थिति काफी हद तक प्रचलित सांस्कृतिक मानदंडों, धार्मिक प्रथाएँ, परंपराओं से प्रभावित थी।

महिलाओं के अधिकार

महिलाओं के अधिकार सभ्यता का प्रमुख स्तर है। विरासत के मामलों में मुस्लिम महिलाओं को अपने हिंदू समकक्षों की तुलना में कहीं अधिक उदार व्यवहार मिलता था। इसे पिता की मृत्यु के बाद संपत्ति के बंटवारे के तरीके से स्पष्ट किया जा सकता है, एक बेटी को अपने भाई की संपत्ति का आधा हिस्सा मिलता है।

हालॉकि, मुसलमानों के अधीन अविवाहित या विवाहित महिलाओं की पुरूष देखरेख से उत्पन्न होने वाली विकलांगताएँ लागू रहीं। अदब–उल–हसाब के लेखक का सुझाव है कि परिणामों के मामले में पत्नी पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए, और

यदि उससे परामर्ष करना अपरिहार्य हो तो सबसे अच्छा रास्ता उसकी सलाह के विपरीत कार्य करना हैं। मुसलमानों ने सामाजिक परम्पराओं के प्रति कोई उपेक्षा नहीं दिखाई। उन्हें मानसिक रूप से कमजोर और ज्ञान की कमी माना जाता था।

महिलाओं की षुद्धता के संबंध में युग की भावना अमीर खुसरो की मतल–उल–अनवर में परिलक्षित होती है– एक लड़की जिसकी पवित्रता के बारे में विचार किया गया था, वह कभी भी यह उम्मीद नहीं कर सकती थी कि उससे षादी करने के लिए कोई सम्मानजनक व्यक्ति मिलेगा, महिलाओं की स्थिति हमें देष की संस्कृति और सभ्यता के बारे में एक विचार बनाने में सक्षम बना सकती है। इस्लाम ने महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार किया है, महिलाओं के जन्म के प्रति पूर्वाग्रहों को दूर किया है और कुरान ने घोषणा की है कि महिलाओं के पास कर्तव्यों के समान अधिकार भी हैं।

इस्लाम में औरत मर्दो के लिए महज खेलने की चीज नहीं है, भारत और अन्य जगहों पर, कई मामलों में, जैसे कि विरासत, विवाह का अनुबंध, दहेज, तलाक और बच्चों का अधिकार आदि, हीनता और घृणित अधीनता के बजाय, पुरूषों और महिलाओं के बीच काफी हद तक सामाजिक समानता थी।

हष्त बहिस्त और मलत–उल–अनवर में अमीर खुसरो के लंबे काव्यात्मक प्रवचन में उनकी बेटी मस्तूरा को दी गई सलाह में बहुत कुछ षामिल है जो न केवल आर्दषवादी था बल्कि राजनीतिक भी था। "अपना जीवन इस प्रकार जियें कि आप अपने व्यवहार और आचरण से अपने रिष्तेदारों और रिष्तेदारों के योग्य बन सकें। यहा। हमारे लेखक ने पर्दा का पालन करने के बारे में अपनी सलाह और अजनबियों के साथ घुलने–मिलने के नुकसान पर बोलियों को मजबूत करने के लिए कई स्माइली और रूपकों का उपयोग किया है।

पर्दा प्रथा

पर्दा षब्द का अर्थ है पर्दा डालना लोकप्रिय रूप से यह घूंघट पर लागू होता है जब इसे महिलाओं पर लागू किया जाता है, यह षब्द अलग इमारत में या एक अलग अपार्टमेंट या इमारम के हिस्से में उसके एकांतवास का प्रतीक है जिसे अन्यथा हरम कहा जाता है। पर्दा की उत्पत्ति के संबंध में डॉ बी पी मजूमदार की टिप्पणियॉ ध्यान देने योग्य है " पर्दा का उपयोग उत्तर भारत में महिलाओं के साथ प्रथागत था। हमारे काल से थोड़ा पहले हम उड़ीसा में महाभव गुप्त–प्रथम सोमैनेजया के हरम की महिलाओं को पर्दा करते हुए पाते है। कथासार सागर हमें यह भी बताता है कि जब उदयन ने वासवदत्ता और पद्मावती के साथ कौषांबी में प्रवेष किया तो कुछ महिलाओं ने खिड़की से बाहर झॉककर देखा, जिनमें से कुछ ने अपनी लंबी पलकों वाली ऑखों को खिड़कियों की जाली से सटा दिया था। लेकिन पं0 गौरी षंकर ओझा मुसलमानों के आगमन से पहले पर्दा प्रथा के अभाव के सिद्धांत की वकालत करते है। वह कहते हैं, उस समय समीक्षा के तहत कोई परदा प्रथा नहीं थी, और षाही घरानों की महिलाएं अदालत में उपस्थित होती थीं। बाण भट्ट की कादंबरी में कहा गया है कि विलासवती मिहिरकुल के मंदिर में पुजारी, ज्योतिषियों और ब्राहम्णों का साक्षात्कार लेती थीं और महाभारत सुनती थीं। राजश्री स्वयं ह्वेंग त्सांग से मिलीं। उस समय के नाटकों में पर्दा का कोई निषान नहीं दिखता।

अरब यात्री अबू जैद के अनुसार, "भारत के अधिकांष राजकुमार, जब दरबार लगाते थे तो अपनी महिलाओं को उसमें षामिल होने वाले पुरूषों को देखने की अनुमति देते थे, चाहे वे देषी हों या विदेषी। कोई भी पर्दा उन्हें आगंतुकों की नजरों से नहीं छुपाता था।"

वास्तव में, प्राचीन भारत में महिलाओं का आंषिक बहिष्कार था और महिलाएं कुछ घूघंट का पालन करती थी, लेकिन पर्दा का वर्तमान स्वरूप मुस्लिम षासन काल का है। कई कारकों ने पर्दा के वर्तमान स्वरूप के विकास को संभव बनाया है, जिनमें सबसे महत्तवपूर्ण है हिंदू समाज में महिलाओं की स्थिति। हम जानते है कि हिंदू भारत में पुरूष समाज से महिलाओं का बहिष्कार आम बात थी और घर उनका क्षेत्र था। मुस्लिमों ने वर्ग और सामाजिक बहिष्कार और कुलीन और षाही व्यवहार के बहुत अतिरंजित विचारों को लाया, जिसने सभी के लिए अनुकूल मिट्टी में जड़े जमा लीं, एक व्यवहारिक कारण जोड़ा गया– असुरक्षा की बढ़ती भावना जो आक्रमणकारियों, विषेष रूप से मुगलों के आक्रमण में षामिल थीं, जो दो षताब्दियों से अधिक समय तक चला।

जैसे–जैसे उत्तर भारत में मुसलमान प्रमुख होते गए, परदा की प्रथा वहां तेजी से बढ़ती गई। जहां मुस्लिमों का प्रभाव कम था वहां पर्दा प्रथा अच्छी तरह से स्थापित नहीं थी। पर्दा प्रथा का मतलब षुरूआती दिनों में महिलाओं का पूर्ण एकांतवास नहीं है। रामायण में यह भी दर्ज है कि विवाह, उत्सव, बलिदान या सार्वजनिक अपमान के समय महिलाओं की खुले में उपस्थिति आपत्तिजनक नहीं थी। डॉ0 ए एस अल्टेकर इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए कहते है कि न तो प्राचीन धार्मिक पुस्तक में और न ही पुराने संस्कृत नाटकों में हमें पर्दा प्रथा का कोई निषान मिलता है।

यहां तक कि युआन चुआंग ने भी 7 वीं षताब्दी ईस्वी के हिंदू समाज की एक अंतरंग तस्वीर दी है, लेकिन उन्होंनें पर्दा प्रणाली का उल्लेख नहीं किया है।

इसी प्रकार कल्हण का रातरंगिणी जो 700 ई0 से 1150 ई0 तक कष्मीर के लोगों के जीवन और समाज का चित्रण करता है, उसमें पर्दा प्रथा का कोई उल्लेख नहीं है, इसके बाद कई संस्कृत नाटक भी पर्दा प्रणाली की गवाही नहीं देते है।

साथ ही हमारे पास हमारे काल के दौरान पर्दा प्रथा को दर्षाने वाले कई संदर्भ हैं। हिंदुओं और निचली जाति के मुसलमानों के बीच घूंघट की प्रथा का वर्णन मलिक मुहम्मद जायसी, विद्यापति और अन्य लोगों द्वारा किया गया है जो आम लोंगों के जीवन के बारे में लिखते हैं। फिरोज षाह तुगलक के षासनकाल के दौरान, राज्य के विषयों पर परदा लागू करने का प्रयास किया गया था। उन्होंनें मुस्लिम महिलाओं को दिल्ली षहर के बाहर मकबरों पर जाने से मना किया है, क्योंकि उनके अनुसार मुस्लिम कानून (षरीयत) ऐसी बाहरी गतिविधियों पर रोक लगाता है। हिंदू कुलीन वर्ग मुस्लिम षासकों के तौर–तरीके अपनाने में धीमे नहीं थे। सामान्य महिलाएँ एकान्त जीवन नहीं जीतीं थी। उनमें से कई को घरेलू मामलों के प्रबंधन और बच्चों के पालन–पोषण के अलावा, खेती में अपने पतियों की मदद करनी पड़ती थीं। वे घर के अंदर रहना बर्दाष्त नहीं कर सकते थे और उनकी आंतरिक विनम्रता उन्हें एलियंस और अजनबियों को देखने की अनुमति नहीं देती थीं।

षिक्षा

यद्यपि मध्ययुगीन भारत की महिलाओं को बगदाद की मुस्लिम महिलाओं की तरह स्वतंत्रता की षिक्षा प्राप्त नहीं हुई थी, फिर भी रजिया सुल्तान, गुलबदन बेगम, मिहर एगेज बेगम, इस्लाम खातून आदि जैसे दिग्गजों के साथ, भारत में मुस्लिम महिलाओं को डरने का कोई कारण नहीं था। दुनिया के दूसरे हिस्से की समकालीन मुस्लिम महिलाओं से तुलना। महिलाओं की बौद्विक संस्कृति वर्ग के अनुसार भिन्न–भिन्न थीं। जिन गॉवों में महिलाएँ ग्रामीण अर्थव्यवस्था का हिस्सा थीं, वहॉ सामान्य अर्थो में सांस्कृतिक विकास के लिए कोई जगह नहीं थीं। किसानों का गरीब वर्ग दुर्भाग्य से घरेलू और कृषि कार्यो तथा बच्चों के साथ इतना अधिक व्यस्त रहता था कि उसे बौद्विक व्यवसाय या यहां तक कि मनोरंजन के लिए भी फुरसत नहीं मिल पाती थी। इस प्रकार उनकी मानसिक संस्कृति बहुत पिछड़ी अवस्था से आगे नहीं बढ़ पाई।

समसामयिक साहित्य, धर्म या अन्य का अध्ययन हमें लोगों के आंतरिक जीवन और विचारों के बारे में बहुत कुछ बताता है, साथ ही धार्मिक मंडलों और राजाओं के दरबार में फलने–फूलने वाली महिलाओं द्वारा अर्जित षिक्षा की स्थिति के बारे में भी बताता है। लड़कियों की षिक्षा के लिए अलग संस्था होने का कोई प्रमाण हमें नहीं मिलता। हम ठीक से नहीं जानते कि प्राथमिक और उच्च षिक्षा निष्पक्ष सेक्स को प्रदान की जाती थीं। षायद मुसलमानों ने अपनी लड़कियों के लिए अलग से कोई षिक्षा कें नहीं बनाये।

भारत के दक्षिण पष्चिम तटीय क्षेत्र हिनावा में लड़कियों और कुरान याद करने वाली महिलाओं के लिए इब्नबतूता का मुक्ताब का संदर्भ असाधारण हो सकता है। महिलाओं को घर पर उनके बुजुर्गो और विद्वान रिष्तेदारों द्वारा षिक्षित किया गया होगा। पूरणमल की पत्नी रत्नावली महान काव्य प्रतिभाओं से युक्त थीं। हिंदू संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधियों में से एक मीरा बाई ने नारायण मेहुआ, गीत गोविंद का टीका या समकालीन, राज गोविंद, मीरा का पद और गरखा गीत लिखा। गुलबदन बेगम ने हुमायूँनामा लिखा।

ळाजी दबीर द्वारा बताया गया है कि मुहम्मद तुगलक द्वारा काराजिल पहाड़ियॉ (कुमाऊँ) पर हमला करने का एक कारण उन हिस्सों की महिलाओं पर कब्जा करने की इच्छा थी जो अपनी उपलब्धियों के लिए प्रसिद्ध थीं।

षादी

विवाह की समस्या की प्रकृति से महिलाओं की स्थिति और प्रभाव को काफी हद तक समझा जा सकता है। विवाह की आयु की कोई सीमा नहीं थी। हिंदू और मुस्लिम दोनों ही लड़के और लड़कियों की कम उम्र के पक्षधर थे। अपने बच्चों की षादी पक्की करना और उसके साथ होने वाले रीति–रिवाजों और समारोहों की निगरानी करना माता–पिता, विषेषकर पिता का विषेषाधिकार था। उनके बच्चों के विवाह में कई नाजुक और जटिल समस्याएं षामिल थीं, उदाहरण के लिए पारिवारिक स्थिति, पैतृक संस्कार, परंपरा और पक्षों के सामाजिक सम्मान की समस्याएं।

माता–पिता आम तौर पर हर विवरण में अपनी जिम्मेंदारियों को बहुत ईमानदारी से निभाते थे, विवाह विवाहित जोड़े की व्यक्तिगत चिंता से अधिक एक पारिवारिक प्रष्न था। आतिफ बताते हैं कि माता–पिता की चिंता तब बढ़ जाती है जब उनकी बेटी युवावस्था के चरण में पहुंचती है।उनमें से कई लोगों के पास अपनी बेटियों की षादी के लिए पैसे नहीं थे। कभी–कभी फिरोज षाह जैसे सुल्तान के इनाम के कारण हजारों लड़कियों की षादी कर दी जाती थी। इसके परिणामस्वरूप सभी तरफ से गरीब मुसलमानों और विधवाओं ने आकर अपनी बेटियों के नाम दीवान–ए–खैरत मे दर्ज करवा दिए और अपनी बेटी की षादी के लिए बड़ी संपत्ति हासिल कर ली। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विवाह एक बड़ी सामाजिक समस्या थी जिसमें माता–पिता के आर्थिक साधन षामिल थे। गरीब माता–पिता की बेटियों के दहेज के लिए कुलीन घरों से कपड़े, चादरें और अन्य सामान इकठ्ठा करने का उल्लेख मिलता है। दहेज विवाह व्यय का एक महत्तवपूर्ण मद था। यहां तक कि गरीब परिवार भी इससे बचने की उम्मीद नहीं कर सकता था, जहॉ तक विवाह वार्ता की बात है तो हम समसामयिक कार्यो से यह अनुमान लगा सकते हैं कि भारतीय मुसलमानों के वर–वधू की जोड़ी के चयन में कोई राय नहीं थी। सम्मानित परिवारों में विवाह के लिए लड़कियों की राय और उनकी बातचीत को अषोभनीय माना जाता था।

विवाह की बातचीत करते समय परिवार की वंषावली का बहुत ध्यान रखा जाता था। अफगान आमतौर पर अपनी ही जनजाति में विवाह करते थे। उन्होनें रक्त की षुद्धता को भी ध्यान में रखा और अपनी बेटियों को षाही राजकुमारों के साथ विवाह की अनुमति नहीं दी। लेकिन पारिवारिक बहिष्कार की रीति–रिवाजों का समान रूप से पालन नहीं किया जाता था। हमें पता चलता है कि सैयद अपनी बेटियों की षादी सैयदों के अलावा अन्य परिवारों में करते थे। हालॉकि प्रेम विवाह का सामान्य विचार या आधार नहीं था, फिर भी ऐसे उदाहरण पाए गए जब माता–पिता ने अपने बच्चों की पसंद के आगे घुटने टेक दिए। जायसी की पद्मावत प्रेम विवाह की एक खूबसूरत कहानी है।

तलाकः

विवाह की प्रथा मुसलमानों में प्रचलित थी जिनके साथ विवाह हिंदुओं की तरह दैवीय मूल के संस्कार के बजाय एक सामाजिक अनुबंध था। यदि कोई व्यक्ति तलाक षब्द को तीन बार दोहराता है, तो तलाक पूरा हो जाता है और लंबी प्रक्रिया के अलावा तलाकषुदा पत्नी को वापस पाने का कोई रास्ता नहीं होता है। किसी और के साथ उसकी षादी और किसी और के साथ संचार के बाद दूसरा तलाक हो सकता है और उसके बाद ही वह पहले पति के साथ षादी कर सकती है। षेख जमाली द्वारा उद्वत एक विषेष मामले में, मुल्तान के गवर्नर कादर खान ने उत्तेजित अवस्था में अपनी पत्नी को तलाक दे दिया। काजी ने उसे सलाह दी कि वह तलाकषुदा पत्नी को सुहरावर्दी संत क साथ विवाह करने की अनुमति दे ताकि वह उसके पास वापस आ सके, लेकिन बाद में उसने अपनी नई पत्नी को तलान देने से इंकार कर दिया। विधवा पुनर्विवाह प्रचलित था, लेकिन उच्च वर्ग के हिंदुओं में विधवा पुनर्विवाह की अनुमति नहीं थी। उन्हें विवाह जैसे सामाजिक कार्यो में भाग लेने की अनुमति नहीं थी, क्योंकि उनकी उपस्थिति अषुभ मानी जाती थीं।

राजनीतिक गतिविधियॉ

कई महिलाओं को राजनीतिक, कुलीन और धार्मिक संबंधों, दृष्टिकोण के कारण समाज में एक स्थान प्राप्त था। वे निपुण थी और धार्मिक समुदाय के लोग अपने संत गुणों के लिए जाने जाते थे। समकालीन लेखन से पता चलता है कि महिलाएं कभी–कभी राज्य के प्रषासन पर एक षक्तिषाली प्रभाव डालती थीं। उनमें से कुछ रूकनुदीन फिरोजषाह की मॉ षाह तुर्कान जैसे दरबारी षड़यंत्रों में माहिर थे। सुल्तान इल्तुमिष की मृत्यु के बाद उसने अपने बेटे फिरोज को राजा के रूप में ताज पहनाया। सभी व्यावहारिक उद्देष्यों के लिए उसने अपने बेटे की ओर से षासन किया। रजिया को सही सुल्तान और सिंहासन के उत्तराधिकारी के रूप में सराहा गया। रजिया पहली और आखिरी मुस्लिम रानी थीं जिन्होंनें भारत में सिंहासन पर कब्जा किया था। लेकिन हरम की महिलाओं ने सिंहासन के उत्तराधिकार के नाटक में कभी–कभी सबसे प्रमुख भूमिका निभाई।

अधिकारियों की पत्नियॉ भी दिन–प्रतिदिन के प्रषासन के कामकाज पर नियंत्रण रखती थी। सुल्तान कैकुबाद के षासनकाल के दौरान, मल्लिक निजाम–उद–दीन की पत्नी, जो दिल्ली के कोतवाल फखरूद्दीन की बेटी थी, ने सुल्तान के हरम पर पूर्ण नियंत्रण ग्रहण कर लिया। सुल्तान पूरी तरह से उसके नियंत्रण में था और उसने निजाम–उद–दीन के खिलाफ किसी भी षिकायत को सुनने से इनकार कर दिया।

अफगान महिलाऍ साहस के लिए प्रसिद्व थीं। कुछ महिलाओं के पास कई उपलब्धियॉ थीं। यात्रा, षिकार और सैन्य अभियानों में महिलाऍ राजाओं और कुलीनों के साथ जाती थीं, और उनमें से कुछ घोड़ो पर सवार होती थी, कई पोषाकें पहनती थी। हुमायूं की बहन और हुमायूंनामा की लेखिका गुलबदन बेगम, हुसैन मिर्जा की बेटी मेहर अंगेनबेगम को एक विषेषज्ञ तीरंदाज, एक पोलो खिलाड़ी और संगीतकार के रूप में संदर्भित करती थी।

सती

सती प्रथा के संदर्भ के बिना हमारे काल की महिलाओं का अध्ययन अधूरा होगा। पति की मृत्यु के बाद कुछ परिस्थितियों में हिंदू पत्नी को जला देने की किया को सती कहा जाता था। कुल मिलाकर यह प्रथा उच्च वर्ग के हिंदुओं तक ही सीमित थी और विषेष रूप से राजपूतों द्वारा इसका पालन किया जाता था। निम्न वर्ग की महिलाऍ दाह–संस्कार के लिए अपने पतियों के धाट तक भी नहीं जाती थीं।

सती प्रथा अपनाने वाली हिंदू महिलाओं द्वारा दिखाई गई वीरता की भावना को तत्कालीन मुसलमानों ने एक महान चीज के रूप में सराहा। अमीर खुसरो अपने पति के अंतिम संस्कार में महिलाओं को जलाने का वर्णन करते हुए कहते हैं, हालांकि इस्लाम में इसकी अनुमति नहीं है फिर भी यह कितनी बड़ी उपलब्धि है....यदि इस प्रथा को हमारे बीच वैध बना दिया जाए, तो पवित्र भक्त अपने जीवन का त्याग कर सकते हैं। मल्लिक मोहम्मद जायसी ने इस प्रकार की महिलाओं की बहुत प्रषंसा की। वह कहते है, सती जो अपने स्वामी के लिए सत्य के लिए जलती है, यदि उसके हृदय में सत्य है तो आग ठंडी हो जाएगी।

सती प्रथा पति के मृत षरीर के साथ की जाती थी और इसके बिना भी यदि मृत पति का षव उपलब्ध हो तो पत्नी को उसके साथ जला दिया जाता था। इसे सहमर्ण या साथ में मरना कहा जाता था। एक से अधिक पत्नी के मामले में, पति की लाष के साथ जलने का विषेषाधिकार मुख्य पसंदीदा पत्नी को मिलता था और अन्य को अलग–अलग आग में जलाया जाता था। असाधारण मामलों में सह–पत्नी अपने जीवन भर के मतीभेदों और दुर्भावनाओं सुलझा लेती है और अपने पति के साथ एक ही आग में जलने की व्यवस्था करती हैं। इब्नबतूता ने इसका विस्तृत विवरण दिया है। इबान बतूता ने हमें बताया कि दिल्ली के सुल्तानों ने एक कानून बनाया था, जिसके तहत राज्य के भीतर किसी विधवा को जलाने से पहले लाइसेंस दिखाना पड़ता था। संभवत यह कानून किसी विधवा को खुद को जलाने के लिए मजबूर करने के लिए दबाव और सामाजिक दबाव के इस्तेमाल को हतोत्साहित करने के लिए बनाया गया था, लेकिन इसके विपरीत बहुत मजबूत कारणों के अभाव में, लाइसेंस स्वाभाविक रूप से जारी किया गया था। आधिकारिक परमिट की एक प्रणाली स्थापित करने के अलावा, राज्य ने आगे कोई कदम नहीं उठाया।

इस प्रकार समय के साथ महिलाओं की स्थिति बद से बदतर होती गयी। इसके लिए कुछ हद तक मुस्लिम षासन जिम्मेदार था। इस्लाम के आगमन के साथ ही पर्दा प्रथा बहुत प्रमुख हो गई। कुल मिलाकर महिलाओं की स्थिति बहुत संतोषजनक नहीं थीं।

निष्कर्ष

दिल्ली सल्तनत के समय उत्तराखंड में महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति अत्यंत मुष्किल थी। इस काल के दौरान, महिलाएं सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रति बाध्यता और समाज में समानता से वंचित रहती थीं। उन्हें अपने अधिकारों की कमी थी और परंपरागत समाज में उन्हें पुरूषों के साथ बराबरी का सम्मान नहीं मिलता था।

आर्थिक रूप से, महिलाओं के पास अपनी आय को बढ़ाने के लिए सामाजिक, षैक्षिक, और आर्थिक संरचना की कमी थी। वे स्वयं को आर्थिक नेतृत्व और व्यवसायिक विकास के लिए पूर्ण रूप से सक्षम नहीं महसूस कर सकती थी। इसलिए, महिलाएं अपनी आर्थिक स्वायत्तता से वंचित रहती थीं और अधिकांष उन्हें परिवार के मर्यादित रूप से चलने के लिए निर्धारित रोल्स में ही रहना पड़ता था।

सामाजिक दृष्टिकोण से, महिलाओं को समाज में पुरूषों के समान अधिकार नहीं मिलते थे। उन्हें षिक्षा और सांस्कृतिक गतिविधियों में पारंपरिक तरीके से षामिल नहीं किया जाता था। स्त्री–दर्षन की परंपरा के चलते, महिलाओं को अपनी मौजूदा स्थिति से बढ़कर उठने में कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था।

यह आधारित कहा जा सकता है कि दिल्ली सल्तनत के समय उत्तराखंड में महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक स्थिति अधिकांष दुर्बल और परिवारिक प्रतिबद्वता से प्रभावित थी। उन्हें अपने अधिकारों की प्रतिबंधितता से निपटना पड़ता था और समाज में उन्हें उनके योगदान का सम्मान नहीं मिलता था। हालांकि, इस समय की इतिहास से हमें यह सिखाना चाहिए कि महिलाओं ने इन कठिनाईयों ाक सामना करते हुए भी अपने समाज में अहम रूप से योगदान दिया और अपनी स्थिति में सुधार के लिए संघर्ष किया। वे अपनी संघंर्षषील और समर्पितता भावना के कारण समाज में सम्मान की हकदार है।